मनुस्मृति में निहित सामाजिक संस्कारों का वर्तमान में प्रासंगिकता

दीपक कुमार*

हमारे पूर्व–पुरुषों ने भारतीय आचार–संहिता के रूप में स्मृतियों की रचना की है जिनमें मानवीय–कर्त्तव्यों का बोध कराया गया है। वेदों तथा स्मृतियों के उपदेश पूर्णतया मनोवैज्ञानिक एंव प्रभु–संमित हैं। अर्थात आदेशात्मक हैं। पुराणों के उपदेश कथाओं के माध्यम से तथा काव्यों में सौन्दर्य–बोध कराते हुए प्रदान किए जाते हैं इन्हें क्रमशः सुहृत्संमित तथा कान्ता–सम्मित कहा गया है। हम इन उपदेशात्मक आचरणों को जीवन में उतारकर ही शिक्षा का अपेक्षित एवं गुणात्मक परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। उक्त ग्रन्थों में मनुस्मृति का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यद्यपि इसकी रचना तत्कालीन सामाजिक, भौगोलिक, राजनीतिक आदि परिवेशों को ध्यान में रखकर की गयी है। तथापि समाज के नैतिक उन्नयन एवं पारस्परिक सौमनस्य के विकास हेतु वर्तमान में भी इसकी उपादेयता असंदिग्ध है। छात्रों में निरन्तर बढ़ती अनुशासनहीनता एवं अकर्मण्यता तथा गुरुजनों में कर्त्तव्यबोध की कमी के निवारण हेतु मनुस्मृति का अनुसरण ही साधन सिद्ध होगा।

मनुस्मृति के रचनाकार वैवश्वत मनु है। धर्मशास्त्रों में चौदह मनुओं का उल्लेख मिलता है जो इस प्रकार है– 1. स्वायंभुव, 2. स्वारोचिष, 3. औन्तमि, 4. तामस, 5. रैवत, 6. चाक्षुष, 7. वैवस्वत, 8. सावर्णि, 9. दक्ष सावर्णि, 10. ब्रह्म सावर्णि, 11. धर्म सावर्णि, 12. रूद्र सावर्णि, 13. रौच्य दैव सावर्णि, 14. इन्द्र सावर्णि। इनमें सातवें मनु वैवस्वत मनु है। इन्हें सूर्य का पुत्र तथा सूर्यवंशी राजाओं का आदि पुरुष कहा गया है। हिन्दू मान्यतानुसार ये ही प्रथम राजा तथा मानव सृष्टिकर्ता है। भगवद्गीता में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।

विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत।।[1]

शोधछात्र (समाजशास्त्र) माधव कालेज, ग्वालियर सम्बद्ध जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म0प्र0)

इस प्रकार मनु योगनिष्ठों के भी प्रवर्तक माने जाते है। कवि कालिदास ने 'रघुवंश' में इन्हें सूर्यवंश का प्रवर्तक माना है–

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणः।

आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव।।[2]

इस प्रकार भारतीय मान्यतानुसार मनु का काल ईशा से कई हजार वर्ष पूर्व निश्चित होता है। विदेशी विद्वानों ने इसकी रचना ईशा से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व के आस–पास माना है।

मनुस्मृति के महत्व का प्रतिपादन अधोलिखित श्लोक में अवलोकनीय है–

मनुस्मृति–विरूद्धा या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते।

वेदार्थेननिबद्धत्वात् प्राधान्यं हि मनोः स्मृतेः।।[3]

मनुस्मृति एक विशाल ग्रन्थ है तथा इसका विभाजन बारह अध्यायों में प्राप्त होता है। प्रथम अध्याय में संसार की उत्पत्ति एवं प्रलय की विभिन्न अवस्थाओं का, मनुस्मृति के आविर्भाव तथा उसकी परम्परा के प्रवर्तन का तथा इसे पढ़ने के अधिकारी तथा फल का वर्णन मिलता है। द्वितीय अध्याय में आर्यों के निवास, सोलह संस्कारों, ज्ञान का महत्व तथा अध्ययन काल में ब्रह्मचारी द्वारा आचरणीय एवं पालनीय नियमों का उल्लेख है। तृतीय अध्याय में गृहस्थ आश्रम में आठ प्रकार के विवाहों, कन्या की पात्रता तथा श्राद्ध में उपयोगी तथा अनुपयोगी द्रव्यों का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में गृहस्थ धर्म की आदर्श आचार–संहित, निषिद्ध कर्मों से बचने तथा चरित्र रक्षा के प्रति सदैव सजग एवं सतर्क रहने, जितेन्द्रिय होने तथा दानादि करने का वर्णन मिलता है। पंचम अध्याय में अभक्ष्य पदार्थों में मांस की प्रमुखता, उसके सेवन में दोष, बेदोक्त हिंसा को अहिंसा मानना, ज्ञान तप एवं अग्नि द्वारा शुद्धि, अर्थ शुचि, देह के बारह मलों तथा स्त्री पुरुष के आदर्श–सम्बन्ध वर्णित है। षष्ठ अध्याय में वानप्रस्थ आश्रम में आचरणीय नियम, मद्य मांसादि सेवन का निषेध, अपरिग्रह, कष्ट सहने का अभ्यास, प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव, आलस्य का त्याग, निन्दा स्तुति से विरति, सन्ध्या वन्दनादि द्वारा मोक्ष के लिए प्रयत्नादि का वर्णन है। सप्तम अध्याय में राजधर्म, दण्ड का महत्व, मंत्रियों से परामर्श, दूतों की ईमानदारी की परख, कर निर्धारण प्रजा की समृद्धि एवं सुख का ध्यान तथा राजनीति में साम, दाम, भेद तथा दण्ड का प्रयोग की व्यवस्था दी

गई है। अष्टम अध्याय में राजा द्वारा प्रजा के विवादों को निपटाने की उचित विधि, अपराधियों के लिए दण्ड, व्यक्ति के स्तर तथा अपराध के अनुसार दण्ड की व्यवस्था, अपने राष्ट्र की सीमा तथा कोश की सुरक्षा के प्रति सावधान रहने का विधान किया गया है। नवम अध्याय में स्त्री पुरुष के पारस्परिक कर्त्तव्य, आपद्धर्म, उत्तराधिकार, बारह प्रकार के पुत्र तथा उनकी उत्तरोत्तर श्रेष्ठता तथा दूसरे के अधिकार का हरण करने पर दण्ड विधान का वर्णन है। दशम अध्याय में मानव जाति को चार वर्णों में विभाजित करके उनके कर्त्तव्यों का निर्धारण, वर्णसंस्कार की सामाजिक स्थिति तथा वर्णों के नियत धर्मपालन की प्रशंसा है। एकादश अध्याय में निषिद्ध कर्मों का प्रायश्चिन्त, विविध पातकों और ज्ञान का महत्व बताया गया है। द्वादश अध्याय में शरीरोत्पत्ति, स्वर्ग–नरक की प्राप्ति कराने वाले कर्म कल्याणकारी कर्म, ब्रह्मवेत्ता की पहचान आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

संस्कार–

मनुस्मृति में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी वर्णन है। जिसमें हिन्दू धर्म से जुड़ी कई संस्कारों का वर्णन मिलता है। संस्कार का सामान्य अर्थ है परिष्कार करना। संस्कार में शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक कार्यों का निरन्तर परिष्कार अथवा शुद्ध करने का अर्थ लिया जाता है। मनुस्मृति के 12–28 श्लोक में कहा गया है–

तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थं उच्यते।

सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रेष्ठ्यमेषां यथोत्तरम्।।[4]

अर्थात् तमोगुण का लक्षण काम, अर्थ (धन) में निष्ठा रजोगुण का और धर्माचरण सतोगुण का लक्षण है ये उत्तरोत्तरा श्रेष्ठ है।

डॉ0 राजबली पाण्डेय हिन्दू संस्कार की व्याख्या करते हुए लिखते हैं, ''हिन्दू संस्कारों में अनेक आरम्भिक विचार, धार्मिक विधि–विधान, उनके सहवर्ती नियम तथा अनुष्ठान भी व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिष्कार, शुद्धि एवं पूर्णता भी है।'' जहाँ तक हिन्दुओं के संस्कारों का सम्बन्ध है वे व्यक्ति के जन्म के पूर्व आरम्भ होते हैं और उसकी मृत्यु–उपरान्त तक चलते रहते हैं। इनकी संख्या अगणित होती है।

मनुस्मृति में मुख्य संस्कारों की व्याख्या इस प्रकार उपलब्ध होती है–

(1) गर्भाधान संस्कार–

यह जीवन का प्रथम संस्कार था। गर्भ धारण के लिये स्मृति ग्रन्थों में उपर्युक्त समय व वातावरण का वर्णन है। मनुस्मृति में वर्णन आया है कि समरात्रि में गर्भाधान होने पर पुत्र एवं विषम रात्रि में कन्या उत्पन्न होती है। वस्तुतः इस संस्कार को सम्पादित करने का उद्देश्य स्वस्थ, सुन्दर, संस्कारित व चरित्रवान सन्तान प्राप्त करना था।

(2) पुंसवन संस्कार –

गर्भाधान से चौथे माह पुत्र प्राप्ति हेतु यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था। पुंसवन का अर्थ है कि वह पूजा या कर्म जिससे पुत्र उत्पन्न हो। चन्द्रमा के पुष्य नक्षत्र में होने पर यह संस्कार सम्पन्न होता था। रात्रि के समय वटवृक्ष की छाल का रस निचोड़कर स्त्री की नाक के दाहिने छिद्र में डाला जाता था। इससे गर्भपात की आशंका समाप्त हो जाती थी।

(3) जात–कर्म संस्कार–

नार काटने के पहले पुरुष का 'जात कर्म; संस्कार किया जाता है। और स्वर्ण, घी तथा मधु का मन्त्रों से प्राशन कराया जाता है।

(4) नामकरण संस्कार–

बालक के जन्म के दसवें या बारहवें दिन यह संस्कार होता था। जिसमें शुभ तिथि, नक्षत्र, मुहर्त का ध्यान रखा जाता था। मनुस्मृति में वर्णन है ब्राह्मण का नाम मंगलसूचक शब्द से युक्त, क्षत्रिय का बल सूचक, वैश्य का धन सूचक और शूद्र का निन्दित शब्द से युक्त नामकरण करना चाहिए। स्त्रियों का नाम सुन्दर, मनोहर, मंगल सूचक और आशीर्वाद से युक्त अर्थ वाला होना चाहिए।

(5) निष्क्रमण संस्कार–

जन्म के तीसरे या चौथे माह में जब बालक को प्रथम बार घर से बाहर निकाला जाता था, तब यह संस्कार सम्पन्न होता था। आँगन में लीपकर स्वास्तिक का चिन्ह बनाकर बालक को माँ की गोंद में बैठाकर सूर्य का दर्शन कराया जाता था।

(6) अन्नप्राशन संस्कार –

बालक के जन्म के छठवें माह में जब उसे प्रथम बार पका हुआ अन्न खिलाया जाता था, तब यह संस्कार होता था। वैदिक मंत्रों के साथ पवित्र रूप से भोजन पकाकर सरस्वती देवी की आहुति दी जाती थी।

(7) चूड़ाकर्म संस्कार–

जब बालक के प्रथम बार बाल काटे जाते थे तब यह संस्कार होता था। जन्म के प्रथम वर्ष की समाप्ति पर या तीसरे वर्ष सम्पन्न होता था। इसे सम्पन्न करने हेतु भी शुभ तिथि, नक्षत्रादि पर विचार किया जाता था।

(8) कर्ण–वेधन संस्कार –

इस संस्कार में बालक का कर्ण छेदा जाता था। इसे पहले तीसरे एवं पाँचवे वर्ष में शुभ माना जाता है।

(9) विद्यारम्भ संस्कार –

यह संस्कार जन्म के पाँचवे वर्ष सम्पन्न होता था।

(10) समावर्तन संस्कार –

यह संस्कार गुरु द्वारा सम्पादित होता था। गुरुकुल में शिक्षा समाप्त कर लेने के पश्चात् विद्यार्थी के घर लौटने के पूर्व यह संस्कार सम्पन्न होता था। इसे स्वान भी कहा जाता था, क्योंकि इस अवसर पर स्नान सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था। इसी के बाद विद्यार्थी स्नातक बनता था।

(11) उपनयन संस्कार –

ब्राह्मण बालक का गर्भ से आठवें वर्ष में, क्षत्रिय बालक का गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य बालक का गर्भ से बारहवें वर्ष में उपनयन संस्कार कराना चाहिए। ब्राह्मण का यज्ञोपवीत कपास का, क्षत्रिय का सूत का और वैश्य का भेड़ के बाल के बने सूत का बँटा हुआ तीन लड़ी का होना चाहिए।

(12) केशान्त संस्कार–

इस संस्कार को अलग–अलग वर्ण के व्यक्ति पृथक–पृथक आयु से करते हैं जैसे 16वें वर्ष में ब्राह्मण बालक का, 22वें वर्ष में क्षत्रिय युवक का, 24वें वर्ष में वैश्य का। इस संस्कार में बाल सिर से उतारे जाते हैं जो ब्रह्मचर्य अवस्था में धारण किये जाते हैं।

(13) वेदारम्भ–

प्रारम्भ में उपनयन संस्कार के साथ ही वेदों का अध्ययन करा दिया जाता था। कालान्तर में इसे उपनयन संस्कार से अलग कर एक नवीन संस्कार बना

दिया। इसमें सर्वप्रथम मातृपूजा होती थी। गुरु अग्नि प्रज्जलित करके विद्यार्थी को पश्चिम में आसीन करता था। मनुस्मृति में कहा गया हे कि वेदारम्भ के प्रारम्भ तथा अन्त में विद्यार्थी में ''ऊँ'' शब्द का उच्चारण करना चाहिये।

(14) विवाह संस्कार–

प्राचीन हिन्दू सामाजिक व्यवस्था की महत्वपूर्ण कड़ी थी जो परम्परा आज भी अस्तित्व में है। विवाह शब्द 'वि; उपसर्गपूर्वक 'वह' धातु से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है वधू को पुरुष के घर ले जाना। इस संस्कार को सम्पन्न करने के बाद मानव पुरुषार्थ को पूर्ण करता था। मनुस्मृति में विवाह के आठ प्रकारों का उल्लेख मिलता है– ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच। आप प्रत्येक विवाह में अन्तर स्पष्ट कर सकें इसलिये प्रत्येक का वर्णन करना समीचीन है–

ब्राह्म– पुत्री का पिता सावधानीपूर्वक वेदज्ञ एवं शीलवान वर का चयन करने के बाद उसे अपने घर बुलाकर पूजा करके वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कन्या को उसे प्रदान करता था यह सर्वोत्तम प्रकार का विवाह था।

दैव– कन्या का पिता एक यज्ञ का आयोजन कराता था जिसमें बहुत से पुरोहित आमन्त्रित किये जाते थे, जो पुरोहित यज्ञ का अनुष्ठान विधिपूर्वक करा लेता था, उसी के साथ कन्या का विवाह करा दिया जाता था।

आर्ष– कन्या का पिता वर को कन्या प्रदान करने के बदले में एक जोड़ी गाय व बैल प्राप्त करता था। यह विवाह पुरोहित परिवारों में ही अधिक प्रचलित था।

प्रजापत्य– कन्या का पिता वर को कन्या प्रदान करते हुये यह आदेश देता था कि दोनों साथ–साथ मिलकर सामाजिक एवं धार्मिक कर्त्तव्यों का निर्वाह करें।

असुर– कन्या का पिता जब धन लेकर कन्या का विवाह सम्पन्न करते थे तो उसे आसुर विवाह कहा जाता था। स्मृतियों में इस विवाह की निन्दा की है।

गान्धर्व– यह प्रणय विवाह था, जिसमें माता–पिता की इच्छा के बिना ही **वर**–कन्या एक दूसरे पर आसक्त होकर विवाह कर लेते थे। वात्सायन ने इस विवाह को 'सबसे पूजित' बतलाया है।

राक्षस– जब बलपूर्वक कन्या का अपहरण करके, कन्या पक्ष वालों की हत्या कर, उनके गृहों को तोड़कर बलात् विवाह करना राक्षस विवाह की श्रेणी में आता है। ऐसा वर्णन मनु ने दिया है।

पैशाच– वर द्वारा जब कन्या के शरीर पर छल, बल द्वारा अधिकार कर लेता था तो यह पैशाच विवाह के अन्तर्गत मानते हुये सभी शास्त्रकारों ने इसकी कटु आलोचना की है।

प्रथम चार विवाह ही प्रशंसनीय व अनुकरणीय थे तथा बाद के चार विवाह समाज में निंदनीय थे।

(15) अन्त्येष्टि संस्कार–यह मानव जीव का अन्तिम संस्कार था जो मृत्यु के समय सम्पन्न किया जाता था। ऐसा मानना था कि यह संस्कार होने पर मृतात्मा स्वर्ग को प्राप्त होती है।

पहले मनुष्य एकाकी जीवन व्यतीत करता था। उसे जब अपने जीवन तथा भोग्यवस्तुओं की रक्षा की चिन्ता होने लगी तो समाज की स्थापना हुई तथा समाज एवं राष्ट्र के अस्तित्व तथा महत्व को समझा जाने लगा। फलतः एक दूसरे के प्रति मान्य आचरण का विधान भी आवश्यक समझा गया। व्यक्ति को सभ्य, सुसंस्कृत तथा सामाजिक बनाने हेतु एवं उसके सर्वतोमुखी विकास के लिए, परिवार में उसके स्थान निर्धारण हेतु, स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की उचित व्यवस्था के लिए, व्यक्ति के संचित धन आदि की सुरक्षा एवं उत्तराधिकार के साथ उसके कर्त्तव्यों तथा अधिकारों की व्याख्या निर्धारित करने तथा मान्य नियमों का अतिक्रमण करने पर प्रायश्चित् तथा दण्ड व्यवस्था की आवश्यकता का अनुभव करके स्मृति ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। कालान्तर में शास्त्र रूप में इन्हें प्रतिष्ठा मिली।

उपर्युक्त वर्णन से आप समझ गये होंगे कि भारतीय समाज में व्यक्तिगत व सामाजिक विकास में इन संस्कारों की कितनी उपयोगिता थी। इन संस्कारों से जीवन शुद्ध होता था तथा अन्ततोगत्वा मोक्ष की प्राप्ति करता था।

मनुस्मृति के प्रतिपाद्य विषयों के इस संक्षिप्त वर्णन से स्पष्ट है कि मानव कल्याण हेतु उसकी लौकिक तथा पारलौकिक समृद्धि के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ की उपयोगिता स्वतः सिद्ध है तथा आधुनिक परिवेश में भी जहाँ दिनानुदिन असामाजिक व्यवहारों, निन्दनीय आचरणों तथा विविध दुष्प्रवृत्तियों का बोलबाला दिखाई देते है, मनुस्मृति में निहित आचरण नितान्त प्रासंगिक है।

सन्दर्भ सूची

1. देवराज, नन्द किशोर,(1999)भारतीय दर्शन, लखनऊ : उ0प्र0 हिन्दी संस्थान।

2. प्रेमनाथ(1969)'शिक्षा के सिद्धान्त', इलाहाबाद : लोक भारती प्रकाशन।
3. मिश्र, राजदेव (2002)मनुस्मृतिः, चौक फैजाबादः घनश्यामदास एण्ड सन्स।
4. लाल, बसन्त कुमार (2005)'समकालीन पाश्चात्य दर्शन', दिल्लीः मोतीलाल बनारसी दास।
5. वर्मा, एम.(1969)द फिलासिफी ऑफ इण्डियन एजूकेशन, मेरठ : मीनाक्षी प्रकाशन।
6. शास्त्री, डॉ0 रामचन्द्र वर्मा (2007)मनुस्मृति, नई दिल्लीः विद्या विहार।
7. त्रिपाठी, रूपनारायण एवं साहू, रामदेव (2001)भारतीय संस्कृति, जयपुरः श्याम प्रकाशन।

*****